आचार्य कुन्दकुन्द और उनकी कृतियाँ

डॉ. प्रभावती चौधरी

कुन्दकुन्दाचार्य की कृतियाँ दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में आगमतुल्य स्थान रखती हैं। षट्खण्डागम एवं कसायपाहुड के अध्येता कम हैं, किन्तु आचार्य कुन्दकुन्द की रचनाओं का स्वाध्याय करने वाले बहुत मिलेंगे। दिगम्बरों के सभी उपसम्प्रदायों एवं श्वेताम्बरों में श्रीमद्राजचन्द्र के अनुयायी आचार्य कुन्दकुन्द की कृतियों को ही आगम मानकर स्वाध्याय करते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द की कृतियाँ अध्यात्म-प्रधान हैं तथा व्यवहार की अपेक्षा निश्चय नय को अधिक महत्त्व देती हैं। इनमें षड् द्रव्यों एवं नव तत्त्वों का अध्यात्मपरक वर्णन उपलब्ध है। जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग की सहायक आचार्य डॉ० (श्रीमती) प्रभावती चौधरी ने प्रस्तुत आलेख में कुन्दकुन्दाचार्य एवं उनकी कृतियों का परिचय देते हुए वैशिष्ट्य से भी अवगत कराया है। **–सम्पादक**

दिगम्बर जैनाचार्यों में कुन्दकुन्द का नाम सर्वोपरि है। मूर्तिलेखों, शिलालेखों, ग्रन्थप्रशस्तिलेखों एवं पूर्वाचार्यों के संस्मरणों में कुन्दकुन्द का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है।

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।[1]

प्रस्तुत मंगल पद्य में भगवान महावीर एवं गौतम गणी के पश्चात् दिगम्बर परम्परा में आचार्य कुन्दकुन्द को ही मंगल माना है। इनकी प्रशस्ति में कविवर वृन्दावन ने अपने सवैया में कहा है कि कुन्दकुन्द जैसे आचार्य न हुए हैं न होंगे–

विशुद्धि बुद्धि वृद्धिदा प्रसिद्ध ऋद्धि सिद्धिदा।
हुए, न हैं न होंहिगें, मुनिंद कुन्दकुन्द से।।

कुन्दकुन्दाचार्य के विषय में यह मान्यता प्रचलित है कि वे विदेह क्षेत्र गए थे एवं सीमंधर स्वामी की दिव्यध्वनि से उन्होंने आत्मतत्त्व का स्वरूप प्राप्त किया था।

कुन्दकुन्द का परिचय– आचार्य कुन्दकुन्द के अपरनामों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। पंचास्तिकाय के टीकाकार जयसेनाचार्य ने कुन्दकुन्द के पद्मनन्दी आदि नामों का उल्लेख किया है। षट् प्राभृत के टीकाकार श्रुतसागरसूरि ने पद्मनन्दी, कुन्दकुन्दाचार्य, वक्रग्रीवाचार्य, एलाचार्य, गृध्रपिच्छाचार्य– इन पाँच नामों का उल्लेख किया है। नन्दिसंघ से सम्बद्ध विजयनगर के शिलालेख में (१३८६ ई. के लगभग) भी उक्त पाँच नामों का उल्लेख किया है। किन्तु अन्य शिलालेखों में पद्मनन्दी या कोण्डकुन्द इन दो नामों का उल्लेख मिलता है। चन्द्रगिरि पर्वत का शिलालेख द्रष्टव्य है–

वन्द्यो विभुर्भुवि न कैरिह कौण्डकुन्दः,

---

1. श्वेताम्बर परम्परा में कुन्दकुन्द के स्थान पर स्थूलिभद्र का नाम लिया जाता है–
मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं स्थूलिभद्राद्यो, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्द–प्रभा–प्रणयि–कीर्तिविभूषिताशः।
यश्चारु–चारण–कराम्बुज–चंचरीक–
श्चक्रे श्रुतस्य भरते प्रयतः प्रतिष्ठाम्।।

अर्थात् कुन्दकुन्द की प्रभा धारण करने वाली जिनकी कीर्ति द्वारा दिशाएँ विभूषित हुई हैं, जो चारणों के अर्थात् चारणऋद्धिधारी महामुनियों के सुन्दर हस्तकमलों के भ्रमर थे और जिन पवित्रात्मा ने भरतक्षेत्र में श्रुत की प्रतिष्ठा की है, वे विभु कुन्दकुन्द इस पृथ्वी पर किससे वन्द्य नहीं हैं?

इन्द्रनन्दी आचार्य ने पद्मनन्दी को कुण्डकुन्दपुर का बतलाया है। इसलिये श्रवणबेलगोला के कितने ही शिलालेखों में उनका कोण्डकुन्द नाम ही लिखा है। श्री पी.वी. देसाई ने 'जैनिज्म इन साउथ इण्डिया ' में लिखा है कि गुण्टकल रेलवे स्टेशन से दक्षिण की ओर लगभग ८ मील पर एक कोनकुण्डल नाम का स्थान है। शिलालेखों में उसका प्राचीन नाम 'कोण्डकुन्दे' मिलता है। सम्भवतः कुन्दकुन्दाचार्य का जन्म-स्थान यही है।

कुन्दकुन्द महान् तपस्वी एवं ऋद्धि प्राप्त थे। किम्वदन्तियों से पता चलता है कि इनके जीवन में कई महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुई थीं। कुछ घटनाएँ निम्नलिखित हैं–

१. विदेह क्षेत्र में सीमन्धर स्वामी के समवशरण जाना व वहां से आध्यात्मिक सिद्धान्त का अध्ययन कर लौटना।

२. ५९४ साधुओं के संघ को लेकर गिरनार की यात्रा करना और वहां श्वेताम्बर संघ के साथ वाद–विवाद होना।

३. विदेह जाते समय पिच्छिका का मार्ग में गिर जाना, अतः गृध्र पक्षी की पिच्छि धारण करने से गृध्रपिच्छाचार्य नाम से प्रसिद्ध होना।

४. अध्ययन की अधिकता से गर्दन झुकने के कारण वक्रग्रीव नाम से प्रसिद्ध होना।

समय निर्धारण– आचार्य कुन्दकुन्द के समय के विषय में विद्वानों में मतभेद है। डॉ. ए.एन. उपाध्ये ने प्रवचनसार की प्रस्तावना में इन मतों पर विचार कर निष्कर्ष निकाला है कि कुन्दकुन्द का समय प्रथम ई. शती के प्रारम्भ में रहा है। प्रो. एम. ए. ढाकी आदि विद्वान् कुन्दकुन्दाचार्य को ईसवीय सातवीं शती में रखते हैं।

कुन्दकुन्द की रचनाएँ

शौरसेनी प्राकृत साहित्य के रचयिताओं में कुन्दकुन्द का स्थान मूर्धन्य है। इनकी सभी रचनाएँ शौरसेनी प्राकृत में हैं। इनमें १. प्रवचनसार २. समयसार ३. पंचास्तिकायसंग्रह विशाल ग्रन्थ हैं एवं जैन धर्म के तत्त्व को समझने की कुंजी है। इनके अतिरिक्त ४. नियमसार ५. अष्टपाहुड (दंसणपाहुड, चरित्तपाहुड, सुत्तपाहुड, बोधपाहुड, भावपाहुड, मोक्खपाहुड, सीलपाहुड, लिंगपाहुड) ६. बारसणुवेक्खा ७. भत्तिसंगहो हैं, जो भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्यात्म की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त 'रयणसार' नामक ग्रन्थ भी कुन्दकुन्द रचित माना जाता है, किन्तु ए.एन. उपाध्ये इस ग्रन्थ को गाथा-विभेद, विचार-पुनरावृत्ति, अपभ्रंशपद्यों की उपलब्धि एवं गण-गच्छादि के उल्लेख मिलने से कुन्दकुन्द कृत होने में आशंका प्रकट करते हैं।

प्रवचनसार—प्रवचनसार के प्रारम्भ में ही कुन्दकुन्दाचार्य ने वीतरागचारित्र के लिए अपनी तीव्र आकांक्षा व्यक्त की है। प्रवचनसार में तीन श्रुतस्कन्ध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध का नाम ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन है। इस अधिकार में जीव का ज्ञानानन्द स्वभाव विस्तृत रूप से समझाया गया है। इसमें केवलज्ञान के प्रति तीव्र आकांक्षा प्रकट की गई है। उनके मत में जो केवल नाम का ज्ञान है वह सुख है, परिणाम भी वही है उसे खेद नहीं कहा है, क्योंकि घातिकर्म क्षय को प्राप्त हुए हैं। केवलज्ञान की सुखस्वरूपता बताते हुए वे कहते हैं— केवलज्ञान पदार्थों के पार को प्राप्त है और दर्शन लोकालोक में विस्तृत है, सर्व अनिष्ट नष्ट हो चुका है और जो इष्ट है वह सब प्राप्त हुआ है अतः केवलज्ञान सुखस्वरूप है। इसके साथ ही कुन्दकुन्दाचार्य ने मुमुक्षुओं को अतीन्द्रियज्ञान एवं सुख की रुचि तथा श्रद्धा कराई है तथा अन्तिम गाथाओं में मोह—राग—द्वेष को निर्मूल करने हेतु जिनोक्त यथार्थ उपाय का भी संकेत किया है।

द्वितीय श्रुतस्कन्ध ज्ञेयतत्त्व-प्रज्ञापन है। जीव के स्वसमय एवं परसमय का निरूपण करते हुए षड् द्रव्य का विवेचन इस श्रुतस्कन्ध का विषय है। इस अधिकार में आचार्य कुन्दकुन्द ने जीव द्वारा पर से भेद विज्ञान का कथन किया है। बन्ध मार्ग हो या मोक्ष-मार्ग जीव अकेला ही कर्ता, कर्म-करण एवं कर्मफल बनता है। उसका पर के साथ कोई भी संबंध नहीं है। जगत् का प्रत्येक द्रव्य उत्पाद—व्यय—ध्रौव्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। हम सत् कहें या द्रव्य, या उत्पाद व्यय ध्रौव्य कहें या गुणपर्याय द्रव्य— सब एक ही हैं। इस अधिकार में कुन्दकुन्दाचार्य ने द्रव्य-सामान्य का लक्षण करते हुए द्रव्य-विशेष का असाधारण वर्णन एवं अपर द्रव्य से उसके भेद का वर्णन किया है। शुद्धात्मा की उपलब्धि का फल, एकाग्र संचेतन लक्षण ध्यान आदि का प्रतिपादन इतना प्रौढ़, मर्मस्पर्शी एवं चमत्कारगुणयुक्त है कि उच्चकोटि के मुमुक्षु को आत्मलब्धि कराता है। यदि कोई स्वरूपलब्धि न भी कर पाए तो भी श्रुतज्ञान की महिमा उसके हृदय में दृढ़ता से स्थापित हो जाती है।

तीसरे श्रुतस्कन्ध का नाम चरणानुयोग सूचक चूलिका है। इसमें शुभोपयोगी मुनि की बाह्य एवं आन्तरिक क्रियाओं की सहजता दिखाई गई है। दीक्षा-विधि, यथाजातरूपत्व, अन्तरंग-बहिरंग छेद, युक्ताहार—विहार, मुनि का आचरण आदि अनेक विषय युक्तियुक्त तरीके से बताए गए हैं। आत्मद्रव्य को प्रधान लक्ष्य बनाकर आचरण की अंतरंग एवं बहिरंग शुद्धता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का ऐसा युक्तियुक्त वर्णन अन्य शास्त्रों में दुर्लभ है।

इस प्रकार तीन श्रुतस्कन्धों में विभाजित आत्म द्रव्य, अन्य द्रव्यों से उसका भेद एवं चरणानुयोग का यथार्थ स्वरूप समझने में निमित्तभूत ग्रन्थ प्रवचनसार है। जिनसिद्धान्त बीज रूप में इस ग्रन्थ में विद्यमान है।

समयसार– **वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोपवं गई पत्ते।**
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवलीभणियं।।

समयसार की इस प्रथम गाथा में कुन्दकुन्दाचार्य की प्रतिज्ञा से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ का नाम 'समयपाहुड' रखना उन्हें अभिप्रेत था। किन्तु प्रवचनसार एवं नियमसार के साथ समयसार नाम प्रचलित हो गया। समय की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गई है– 'समयते एकत्वेन युगपज्जानाति गच्छति च' अर्थात् जो पदार्थों को एक साथ जाने अथवा गुण पर्याय रूप परिणमन करे वह समय है। इस निर्वचन के अनुसार जीव समय है और प्राभृत 'प्रकर्षेण आसमन्तात् भृतम् इति' निरुक्ति के अनुसार समस्त युक्तियों से समन्वित उत्कृष्टता से परिपूर्ण होता है। इसे शास्त्र भी कह सकते हैं। इस शास्त्र में जीव या आत्मा का निरूपण है।

ग्रन्थ में दस अधिकार हैं। प्रथम पूर्वरंगाधिकार है। ३८ गाथाओं में से १२ गाथाएँ पूर्वपीठिका के रूप में हैं, जिनमें ग्रन्थकार ने मंगलाचरण, ग्रन्थ-प्रतिज्ञा, स्वसमय-परसमय का निरूपण किया है, शुद्ध एवं अशुद्ध नय का स्वरूप भी इस अधिकार में प्राप्त है।

दूसरा अधिकार जीवाजीवाधिकार है। जीव का अजीव से अनादिकाल से संबंध चला आ रहा है। इसी कारण वह नोकर्म रूप परिणति को आत्म-परिणति मानकर अहं का कर्ता होता है। इस अधिकार में शुद्ध-अशुद्ध, निश्चय एवं व्यवहार नय का भी सम्यक् निरूपण है।

तृतीय कर्तृकर्माधिकार है। इसमें जीव-अजीव के अनादिकाल से चले आ रहे संबंध एवं कारण का विस्तार से निरूपण है। जीव स्वयं को पर का कर्ता मानकर कर्तृत्व के अहंकार से युक्त होता है तथा पर की इष्ट-अनिष्ट परिणति में हर्ष व विषाद का अनुभव करता है।

चतुर्थ पुण्यपापाधिकार है। इस अधिकार में आचार्य ने मोक्ष के अभिलाषी जीव को पुण्य-प्रलोभन के प्रति सचेत किया है। अशुभ के समान शुभ भी जीव को संसारचक्र में फंसाने वाला है। अतः मुमुक्षु के द्वारा अशुभोपयोग के समान शुभोपयोग भी त्याज्य है।

पंचम आस्रवाधिकार है। इसमें जीव की संसारी अवस्था की हेयता एवं मुक्तावस्था की उपादेयता का निरूपण है।

षष्ठ संवराधिकार है। आस्रव का रुक जाना संवर है। उमास्वाति आदि आचार्यों ने गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय रूप चारित्र को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवर कहा है, किन्तु कुन्दकुन्द ने भेद-विज्ञान को संवर माना है। उनके मत में आज तक जितने भी सिद्ध हुए हैं, इस भेदविज्ञान द्वारा हुए हैं।

सप्तम निर्जराधिकार है। संवर के पश्चात् निर्जरा होती है। सम्यग्दृष्टि ज्ञान तथा वैराग्य के कारण कर्मफलों को त्यागकर बन्धमुक्त हो जाता है। उसके पुन: कर्मों का बन्ध नहीं होता। इस अधिकार में सम्यग्दर्शन के आठ अंगों का विशद वर्णन किया गया है।

अष्टम अधिकार में बन्ध का निरूपण है। बन्ध का प्रमुख कारण राग को माना गया है। सम्यग्दृष्टि जीव बंध के कारणों को जानकर उन्हें दूर कर देता है एवं निर्बन्धावस्था को प्राप्त हो जाता है, किन्तु मिथ्यादृष्टि अज्ञान के कारण निर्बन्धावस्था को प्राप्त नहीं होता।

नवम मोक्षाधिकार है। आत्मा की सर्वकर्म से मुक्तावस्था को मोक्ष कहते हैं। मोक्ष-प्राप्ति के लिए यथार्थ ज्ञान एवं श्रद्धान के साथ सम्यक् चारित्र पर अत्यधिक बल दिया है।

दशम सर्वविशुद्धिज्ञानाधिकार है आत्मा के अनन्तगुणों का ज्ञान ही आत्मा का प्रधान गुण है।

अन्त में अमृतचन्द्राचार्य ने आत्मख्याति टीका के अंगरूप में स्याद्वादाधिकार एवं उपायोपेयभावाधिकार लिखे हैं, जिनमें अनेकान्त का समर्थन करने के लिए अनेक नयों द्वारा आत्म-तत्त्व का निरूपण किया गया है।

पंचास्तिकायसंग्रह— यह ग्रन्थ जिन-सिद्धान्त एवं जिन अध्यात्म का प्रवेश द्वार है। आचार्य कुन्दकुन्द ने महाश्रमण तीर्थंकर देव की वाणी का सार—संक्षेप इस ग्रन्थ में गुम्फित किया है। पंचास्तिकाय का प्रतिपाद्य अमृतचन्द्राचार्य ने इस प्रकार प्रतिपादित किया है—

पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रकारेण प्ररूपणम्।
पूर्वं मूलपदार्थानामिह सूत्रकृताकृतम्।।
जीवाजीवद्विपर्यायरूपाणां चित्रवर्त्मनाम्।
ततो नवपदार्थानां व्यवस्था प्रतिपादिता।।
ततस्तत्त्वपरिज्ञानपूर्वेण त्रितयात्मना।
प्रोक्ता मार्गेण कल्याणी मोक्षप्राप्तिरपश्चिमा।।

अमृतचन्द्राचार्य ने पंचास्तिकाय को दो खण्डों में विभक्त किया है, किन्तु जयसेनाचार्य ने इसे तीन अधिकारों में विभक्त किया है। प्रथम अधिकार तो अमृतचन्दाचार्य के प्रथम श्रुतखण्ड के समान ही है। द्वितीय श्रुतखण्ड का द्वितीय एवं तृतीय अधिकार में विभाजन किया है।

प्रथम खण्ड में मूलपदार्थों का पंचास्तिकाय एवं षड्द्रव्य के रूप में निरूपण है। मंगलपाठ एवं ग्रन्थ प्रतिज्ञा के पश्चात् पाँच अस्तिकायों का वर्णन है। अस्तिकाय का तात्पर्य है— अस्तित्व एवं कायत्व। अस्तित्व को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्ता कहते हैं। यही द्रव्य का लक्षण है। यह प्रथम खण्ड ही प्रथम अधिकार भी है। दूसरे खण्ड में जीव अजीव के पर्याय रूप नव पदार्थों का निरूपण है। इसी खण्ड को जयसेनाचार्य ने द्वितीय एवं तृतीय अधिकारों में विभाजित किया है। द्वितीय अधिकार में जीव—अजीव एवं इनके संयोग से निष्पन्न होने वाले सात पदार्थो का निरूपण है। तृतीय अधिकार में स्वसमय, परसमय एवं मोक्षमार्ग का निरूपण है।

कुन्दकुन्द ने पर के प्रति राग का सर्वथा निषेध इस ग्रन्थ में किया है—

सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स।
दूरतरं णिव्वाणं संजमतवसंपउत्तस्स।।

पर के प्रति किंचित् मात्र भी अनुराग, यहां तक कि तीर्थंकर देव के प्रति किया गया भी अनुराग मोक्ष से दूर रखता है। अत:मोक्षमार्गी को राग से दूर रहना चाहिए।

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणउ मा किंचि।
सो तेण वीदरागो भविओ भवसायरं तरदि।।

अर्थात् जिसका किंचित् मात्र भी राग नहीं है वह वीतराग भवसागर से तर जाता है।

पंचास्तिकाय को आधार मानकर अनेक ग्रन्थ लिखे गए। जिनमें द्रव्यसंग्रह प्रमुख है। प्रवचनसार, नियमसार, समयसार आदि ग्रन्थों को समझने के लिए पंचास्तिकाय का अध्ययन जरूरी है।

नियमसार— इस ग्रन्थ में नियम (मोक्षमार्ग) एवं नियम फल (मोक्ष) का निरूपण है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र ही नियम अथवा मोक्षमार्ग है। सम्यक् चारित्र व्यवहार एवं निश्चय से दो प्रकार का है। इनमें निश्चय चारित्र ही मोक्षमार्ग है। वस्तुत: उस परमागम की रचना कुन्दकुन्द ने स्वान्त: सुखाय की है, जैसा कि इस गाथा से स्पष्ट है—

णियभावणिमित्तं मए कदं णियमसारणामसुदं।
णच्चा जिणोवदेसं पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं।।

नियमसार में सम्पूर्ण विषयवस्तु को १८७ गाथाओं में बारह भागों में विभाजित किया गया है— १. जीवाधिकार २. अजीवाधिकार ३. शुद्धभावाधिकार ४.व्यवहारचारित्राधिकार ५.परमार्थप्रतिक्रमणाधिकार ६. निश्चयप्रत्याख्यानाधिकार ७. परमालोचनाधिकार ८. शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्ताधिकार ९. परमसमाधिअधिकार १०.परमभक्ति अधिकार ११.निश्चय-परमावश्यकाधिकार १२.शुद्धोपयोगाधिकार।

प्रथम अधिकार में मंगलपाठ, ग्रन्थ प्रतिज्ञा, प्रतिपाद्य के पश्चात् 'नियमसार' नाम की सार्थकता का प्रतिपादन है, तदनन्तर मोक्षमार्ग या नियम की चर्चा है।

द्वितीयाधिकार में पाँच अजीव द्रव्यों का व तृतीयाधिकार में आत्मा के स्वपरभाव का विवेचन है। व्यवहारचारित्राधिकार में पाँच व्रतों, पाँच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समितियों एवं तीन गुप्तियों का निरूपण है। पंचमाधिकार में आत्मा के माध्यस्थभाव एवं प्रतिक्रमण की चर्चा है। वस्तुत: आत्माराधन ही परमार्थ प्रतिक्रमण है।

आगे के दोनों अधिकारों में ध्यान का निरूपण है। वस्तुत: ध्यान ही सर्व अतिचार का अतिक्रमण है। समस्त वचनों को छोड़कर तथा अनागत शुभाशुभ का निवारण करके जो आत्मा का ध्यान है वही प्रत्याख्यान है।

शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्ताधिकार एवं परम समाधि अधिकार में आत्मा—ध्यान एवं ध्याता—ध्येय की एकरूपता का विवेचन है।

परम भक्ति—अधिकार में आत्मा को आत्मा के साथ योग का निरूपण है। काम क्रोधादि से रहित सदा आत्मभाव में रहने वाला ही भक्त है।

निश्चयपरमावश्यकाधिकार एवं शुद्धोपयोगाधिकार में भी आत्मा के स्व परभव एवं निर्वाण का वर्णन है।

इस प्रकार सम्पूर्ण नियमसार में सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र रूप नियम तथा शुद्धभाव में स्थित आत्मा की आराधना का निरूपण है। शुद्धात्मा ही आराध्य है इसके श्रद्धान, ज्ञान एवं ध्यानरूप परिणितियाँ साधन हैं।

अष्टपाहुड— प्रवचनसार एवं नियमसार के समान अष्टपाहुड भी कुन्दकुन्द के प्रमुख ग्रन्थों में है। अष्ट पाहुड में आठ पाहुड हैं, जिनमें पाहुड के नाम के अनुरूप ही विषयों का निरूपण है, यथा—

1. **दर्शनपाहुड**— इसमें सम्यग्दर्शन का निरूपण है। दर्शन के भेद, सम्यक्त्व के गुण एवं इनका प्रशमादि चिह्नों में अन्तर्भाव किया गया है। सम्यग्दृष्टि का लक्षण देते हुए मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन का महत्त्व बतलाया गया है।

2. **सूत्रपाहुड**—इसमें श्रुतज्ञान के महत्त्व एवं सूत्रों की उपादेयता का निरूपण है। द्वादशांग एवं अंगबाह्य रूप श्रुत का वर्णन है। सूत्र के अर्थ को जानने वाला सम्यग्दृष्टि है एवं सूत्र के अर्थ व पद से भ्रष्ट मिथ्यादृष्टि है।

3. **चारित्र पाहुड**— सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय का निरूपण करते हुए चारित्र के सम्यक्त्व का वर्णन है। सम्यक् चारित्र के दो भेद हैं— सम्यक्त्व चरण एवं संयम चरण। इनके भेदोपभेदों का विस्तृत वर्णन इस पाहुड में किया गया है। अन्त में निश्चय चारित्र रूप ज्ञानधारकों की सिद्धि का वर्णन है।

4. **बोधपाहुड**—इसमें आयतन-त्रय का लक्षण, चैत्यगृह, जिनप्रतिमा, जिनबिम्ब, जिनदर्शन, जिनमुद्रा, आत्मज्ञान, देव, तीर्थ, अर्हन्त, प्रव्रज्या आदि का ज्ञान दिया गया है।

5. **भावपाहुड**— चित्त शुद्धि के बिना तप भी सिद्धि में सहायक नहीं है। इस पाहुड में सांसारिक गतियों के दु:खों का वर्णन एवं विविध मुनियों की कथाओं द्वारा चित्त शुद्धि की महत्ता का निरूपण है। भावपाहुड को पढ़ने एवं सुनने मात्र से मोक्ष-प्राप्ति का कथन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

6. मोक्षपाहुड– इसमें आत्मतत्त्वविवेचन, बन्ध-कारण एवं बन्धनाश का निरूपण, आत्मज्ञान की विधि, रत्नत्रय का स्वरूप एवं परम पद की प्राप्ति का वर्णन है। आत्मा के तीन भेदों बहिरात्मा, अन्तरात्मा एवं परमात्मा को समझाया गया है।

7. लिंगपाहुड– इसमें भावधर्म की प्रधानता है एवं श्रमणलिंग को लक्ष्य करके मुनिधर्म का निरूपण किया गया है।

8. शीलपाहुड– शील के द्वारा ज्ञान-प्राप्ति एवं ज्ञान के द्वारा मोक्ष-प्राप्ति का निरूपण है। शील के अंग तपादि का वर्णन है। मोक्ष में मुख्य कारण शील को ही माना गया है। जीवदया, इन्द्रियदमन, पंचमहाव्रत, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं तप को शील के अन्तर्गत ही परिगणित किया गया है।

रयणसार– इस ग्रन्थ में रत्नत्रय का विवेचन है। कुल १६७ पद्य हैं। किसी—किसी प्रति में १५५ पद्य ही मिलते हैं। इस रचना के कुन्दकुन्दकृत होने के विषय में विद्वानों में मतभेद है।

द्वादशानुप्रेक्षा– इसमें बारह प्रकार की अनुप्रेक्षाओं का विस्तार से वर्णन है। हर साधक को इनकी अनुपालना करनी आवश्यक है। इसमें अनित्य, अशरण, एकत्व, अन्यत्व, संसार, लोक, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, धर्म एवं बोधि दुर्लभ इन बारह भावनाओं का ९१ पद्यों में निरूपण है।

भत्तिसंगहो (भक्तिसंग्रह)– इसमें सिद्धों के गुण, भेद, आकृति, श्रुतज्ञान के स्वरूप, **पाँच** चारित्रों, निर्वाण आदि के वर्णन के साथ निर्वाण प्राप्त तीर्थंकरों की, पंचपरमेष्ठी की स्तुति की गई है। भक्ति की संख्या भी आठ है– १. सिद्धभक्ति २. श्रुत भक्ति ३. चारित्र भक्ति ४. योगि भक्ति ५. आचार्य भक्ति ६. निर्वाण भक्ति ७. पंचगुरुभक्ति ८. कोस्सामि थुदी।

इस प्रकार शौरसेनी प्राकृत के आगम—ग्रन्थों में कुन्दकुन्द की कृतियों का स्थान सर्वोपरि माना जाता है।

कुन्दकुन्द के ग्रन्थों का वैशिष्ट्य

कुन्दकुन्द के समस्त ग्रन्थों का पर्यालोचन करने से कुन्दकुन्द साहित्य की कतिपय विशेषताओं का स्वरूप प्रकट होता है। कुन्दकुद का नय—विषयक विचार, अध्यात्मविषयक दृष्टि एवं शील का निरूपण विशिष्ट है।

नय—विषयक विचार– नयों का निरूपण करने वाले आचार्यों ने नय का शास्त्रीय एवं आध्यात्मिक दृष्टि से विवेचन किया है। शास्त्रीय दृष्टि से नय—विवेचना में नय के द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक तथा नैगमादि सात भेद निरूपित किये गए हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से निश्चय एवं व्यवहार नय का निरूपण है।

कुन्दकुन्द के मत में संसारावस्था में निश्चय एवं व्यवहार समान रूप से उपयोगी हैं, किन्तु मोक्षावस्था में निश्चय की ही उपयोगिता है, व्यवहार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुपयोगी है। कुन्दकुन्द ने अन्याचार्यों द्वारा कथित निश्चय के दो भेद– शुद्ध निश्चय एवं अशुद्ध निश्चय को भी दर्शाया है, किन्तु शुद्ध निश्चय की ही उपयोगिता सिद्ध करते हुए अशुद्ध को ही व्यवहार माना है। जैसे वेदान्त में ब्रह्म ही परम सत्य एवं जगत् मिथ्या है उसी प्रकार अध्यात्म विचारणा में शुद्ध बुद्ध परमात्मा ही सत् है एवं उसकी अन्य समस्त दशाएँ व्यवहार सत् हैं। निश्चयदृष्टि को परमार्थ एवं व्यवहारदृष्टि को अपरमार्थ कहा गया है। निश्चय दृष्टि ही भूतार्थ है क्योंकि मुमुक्षु को वही आत्मा के शुद्ध स्वरूप का दर्शन कराती है। व्यवहार दृष्टि अभूतार्थ है। जैसे म्लेच्छ को समझाने के लिए म्लेच्छ भाषा का आश्रय लेना पड़ता है उसी प्रकार बंध में पड़े जीव को समझाने के लिए व्यवहार का आश्रय लेना पड़ता है।

समयसार में आध्यात्मिक दृष्टि से ही नयों का वर्णन हैं। अतः निश्चय नय एवं व्यवहार नय के द्वारा शुद्धात्मा का स्वरूप वर्णन किया गया है। किन्तु प्रवचनसार एवं पंचास्तिकाय में द्रव्य विवेचन का विषय होने के कारण शास्त्रीय दृष्टि से द्रव्यार्थिक एवं पर्यायार्थिक नय का वर्णन प्राप्त होता है। द्रव्यार्थिक नय द्रव्य को आधार बनाकर एवं पर्यायार्थिक नय पर्याय को आधार बनाकर प्रवृत्त होता है।

निश्चय एवं व्यवहार अथवा द्रव्यार्थिक एवं पर्यायार्थिक नय के विरोध का अन्त करने वाला अनेकान्त सिद्धान्त है। अमृतचन्द्राचार्य ने इसे इस प्रकार दर्शाया है—

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के,
जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै,
रन्वमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव।।

आध्यात्मिक दृष्टि— कुन्दकुन्द के समस्त ग्रन्थों में शुद्धात्मा के स्वरूप की प्राप्ति एवं मोक्ष को प्रधान बनाकर ही विषय की चर्चा की गई है। अतः कई स्थानों पर विषयों की पुनरुक्ति भी मिलती है। मोक्षमार्ग में अचेलक व्रत की महिमा कुन्दकुन्द की दिगम्बर परम्परा को द्योतित करती है। संसारावस्था में जीव के बन्धकारणों की विस्तृत चर्चा एवं उससे निवृत्ति के लिए रत्नत्रय का निरूपण कुन्दकुन्द के ग्रन्थों की मुख्य विशेषता है। कुन्दकुन्द ने मोक्ष में यथार्थज्ञान एवं दर्शन के साथ चारित्र पर अत्यधिक बल दिया है। उनके मत में मात्र ज्ञान एवं दर्शन से दीर्घकाल ऐसे ही बीत जाता है, किन्तु ज्ञान एवं दर्शन के साथ चारित्र को अंगीकार करने से अन्तर्मुहूर्त में भी मोक्ष संभव है। इसके अतिरिक्त कुन्दकुन्द ने अपने ग्रन्थों में तप की अपेक्षा भेद-विज्ञान को अधिक महत्त्व दिया है। अन्य आचार्य कर्म-निर्जरा में तप को महत्त्व देते हैं, किन्तु कुन्दकुन्द के अनुसार तप के होने पर भी भेद विज्ञान के अभाव में संवर एवं निर्जरा असंभव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुतः कुन्दकुन्द के ग्रन्थ मोक्षमार्ग के जिज्ञासु के लिए जिन-सिद्धान्तों को समझने के लिए आधार स्तम्भ हैं।

कुन्दकुन्द के प्रमुख टीकाकार

1. **अमृतचन्द्राचार्य**– अमृतचन्द्राचार्य ने प्रवचनसार, समयसार एवं पंचास्तिकाय ग्रन्थों पर संस्कृत टीकाएं लिखी हैं। ये टीकाएं अत्यन्त विशद हैं एवं कुन्दकुन्द के हार्द को समझने की कुंजी हैं। इनकी भाषा अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण है। अतः कुछ कठिन अवश्य हैं। इन्होंने अपनी टीकाओं के भाव को प्रकट करने के लिए कुछ पद्य भी लिखे हैं जो 'कलश' नाम से प्रसिद्ध हैं। ये कलशकाव्य विद्वानों में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं एवं नित्य पाठ में सम्मिलित हो गए हैं। आचार्य ने अपना परिचय किसी भी टीका में नहीं दिया है। इनका समय विक्रम संवत् १००० के लगभग माना गया है।

2. **जयसेनाचार्य**– इन्होंने भी प्रवचनसार, समयसार, पंचास्तिकाय पर तात्पर्य नामक टीकाएं लिखी हैं। इनकी भाषा अत्यन्त सरल है एवं अध्यात्म को समझने के अनुरूप है। गाथाओं को सरल रूप से समझा कर विषय का खुलासा ग्रन्थ में कर दिया गया है। ये बारहवीं शती के विद्वान माने गए हैं।

3. **श्रीपद्मप्रभमलधारिदेव**– इनका समय विक्रम संवत् बारहवीं शती माना गया है। इन्होंने नियमसार पर तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीका लिखी जो वैराग्य भाव एवं शान्तरस से परिपूर्ण अद्भुत टीका है।

4. **भट्टारक श्रुतसागरसूरि**– इनका समय विक्रम की सोलहवीं शती माना गया है। अष्टपाहुड के प्रारम्भिक छः पाहुड़ों पर उनकी 'षट्पाहुड' नाम से संस्कृत टीका मिलती है।

5. **पं. बनारसीदास**– इनका समय १७वीं शती विक्रम संवत् माना गया है। यह श्रीमाल वैश्य थे। जैन साहित्य में हिन्दी भाषा के ये महान् कवि थे। इन्होंने कुन्दकुन्द के ग्रन्थों पर हिन्दी टीका लिखी एवं विषय को खोल कर रख दिया।

6. **पं. जयचन्द्र**–आत्मख्याति के आधार पर समयसार की सर्वप्रथम हिन्दी टीका पं. जयचन्द्र ने की। इनका टीकाकाल वि.सं. १८६४ है। ये खण्डेलवान जैन थे एवं संस्कृत भाषा के अच्छे ज्ञाता थे। पं. बनारसीदास एवं पं. जयचन्द्र का अन्य साहित्य भी बहुलता से प्राप्त होता है। विस्तार भय से उनकी चर्चा करना उचित नहीं।

–वरिष्ठ सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org